मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना, हिन्दी है हम, वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा...

जैन धर्म

जैन दर्शन (उद्भव और विकास)

गतांक से आगे....

जैन दर्शन
आचार्य गृद्धपिच्छ
समय काल

इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्वर्गीय पंडित जुगलकिशोर मुख्तार ने अपने विस्तृत लेखों में अनेक प्रमाण देकर यह स्पष्ट किया है कि स्वामी समन्तभद्र 'तत्वार्थ सूत्र' के दर्ता आचार्य उमास्वामी के पश्चात एवं पूज्यपाद स्वामी के पूर्व हुए हैं। अतः ये असन्दिग्ध रूप से विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी के महान् विद्वान थे। अभी समन्तभद्र के सम्बन्ध में यही विचार सर्वमान्य माना जा रहा है।

अपवाद

संसार की मोह ममता से दूर रहने वाले अधिकांश जैनाचार्यों के माता-पिता तथा जन्म स्थान आदि का कुछ भी प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। समन्तभद्र स्वामी भी इसके अपवाद नहीं है। श्रवणबेलगोला के विद्वान दौर्बलिजिनदास शास्त्री के शास्त्र भंडार में सुरक्षित 'आप्तमीमांसा' की एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति के निम्नांकित पुष्पिकावाक्य से स्पष्ट है कि समन्तभद्र फणिमंड्लान्तर्गत उरगपुर के राजा के पुत्र थे- ''इति श्री फणिमंडलालंकार स्योरगपुराधिपसूनोः श्रीस्वामी समन्तभद्रमुनेः कृतौ आप्तमीमांसायाम''

इसके आधार पर उरगपुर समन्तभद्र की जन्मभूमि अथवा बाल क्रीड़ा भूमि होती है। यह उरग्पुर ही वर्तमान का 'उरैयूर' जान पड़ता है। उरगपुर चोल राजाओं की प्रचीन राजधानी रही है। पुरानी त्रिचनापल्ली भी इसी को कहते हैं। समन्तभद्र का प्रारम्भिक नाम 'शान्तिवर्मा' था। दीक्षा के पहले आपकी शिक्षा या तो उरैयूर में हुई अथवा कांची या मदुरै में हुई जान पड़ती है, क्योंकि ये तीनों ही स्थान उस समय दक्षिण भारत में विद्या के मुख्य केन्द्र थे। इन सब स्थानों में उस समय जैनियों के अच्छे-अच्छे मठ भी मौजूद थे।

क्रमशः

पुराण! मनुष्य के भूत, भविष्य, वर्तमान का दर्पण

गतांक से आगे.....

वेद
वेद का स्वरूप
वेद के भाग
अर्थवाद

किंतु इस कार्य (प्रशंसा और निन्दा)- में अर्थवाद मुख्यार्थद्वारा अपने तात्पर्यार्थ की अभिव्यक्ति नहीं करता, अपितु शब्द की लक्षणा शक्ति का आश्रय ग्रहण करता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि मीमांसक-दृष्टि से समस्त वेद क्रियापरक है तथा यागादि क्रिया द्वारा ही अभीष्ट-प्राप्ति एवं अनिष्टका परिहार किया जा सकता है। यतः स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस विधान से वेद के अन्तर्गत ही अर्थवाद भी है, अतः उनको भी क्रियापरक मानना उचित है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि अर्थवाद का प्रयोजन विधेयकी प्रशंसा एवं निषिद्ध की निन्दा में प्रकट होता है। विधान एवं निषेध क्रिया का ही होता है, अतः परम्परया अर्थवाद-वाक्य

क्रिया (याग या धर्म) परक होते हैं, अतएव उनका प्रामाण्य एवं उपादेयता सर्वथा सिद्ध है। इसी बात को आचार्य जैमिनि ने इन शब्दों में कहा है- विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः। उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध के बाद से पाश्चात्य नव्य वेदार्थ- विचार कों- बर्गाइन आदि ने भारतीय चिन्तन की इस दृष्टि को समझा तथा उसके आलोक में नये सिरे से वेदार्थ-विचार में दृष्टि डाली।

प्राशस्त्य और निन्दा से सम्बन्धित अर्थवाद-वाक्य क्रमशः विधिशेष एवं निषेधशेष-रूप से अभिहित किये गये हैं। विधि अर्थात विधायक वाक्य, शेष- अर्थवाद-वाक्य दोनों मिलकर एक समग्र वाक्य की रचना करते हैं, जो कि विशिष्ट प्रभावोत्पादक बनता है। उदाहरणार्थ- 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः' यह विधि-वाक्य है। इसका शेष- अर्थवाद वाक्य है- 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता'। यहाँ वायु की प्रशंसा विधिशेषात्मक अर्थवाद से गयी है। उपर्युक्त दोनों वाक्यों की एकवाक्यता करके लक्षणा द्वारा यह विदित होता है कि वायुदेवता शीघ्रगामी हैं, अतः वे ऐश्वर्य भी शीघ्र प्रदान करते हैं। अब इस विशिष्ट प्रभावोत्पादक अर्थ को सुनकर अधिकारी व्यक्ति की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार निषेध-शेषात्मक अर्थवाद का भी साफल्य जानना चाहिये।

क्रमशः

परिचय- मसीही धर्म और प्रभु यीशु

गतांक से आगे...

ईसाई धर्म कोश
ईसाई धर्म का प्रचार
ऐंग्लिकन समुदाय

इतिहास- एलिजाबेथ के समय में प्युरिटन दल का उदय हुआ किंतु वह विशेष रूप से जेम्स प्रथम (सन् 1603-25 ई.) तथा चार्ल्स प्रथम (सन् 1625-1649 ई.) के राज्यकाल में सक्रिय था। प्युटिन दल ऐंग्लिकन चर्च को प्रोटेस्टैंट धर्म के अधिक निकट ले जाना चाहता था।

वह कुछ समय तक सर्वोपरि रहा तथा सन् 1643 ई. में पार्लियामेंट द्वारा बिशप की पदवी का उन्मूलन कराने में समर्थ हुआ। यह परिस्थिति सन् 1660 ई. तक बनी रही। ऐंग्लिकन चर्च का इतिहास आगे चलकर प्रधानतया इसकी विभिन्न विचारधाराओं का उतार-चढ़ाव है। यहाँ पर ऐक्ट ऑव सक्सेशन का उल्लेख करना जरूरी है जिसके अनुसार इंग्लैंड के भावी राजाओं का ऐंग्लिकन होना अनिवार्य ठहराया गया है। (सन् 1701 ई.)।

सिद्धांत- रोम से अलग हाते हुए भी ऐंग्लिकन चर्च अपने को काथलिक चर्च का अंग मानता है। सैद्धांतिक दृष्टि से उसका स्थान रोमन काथलिक चर्च तथा प्रोटेस्टैंट धर्म के बीच में है। इसी में ऐंग्लिकन चर्च का विशेष महत्व है और इसी कारण उसे **'ब्रिज चर्च'** की उपाधि दी गई है क्योंकि वह पुल की भाँति दोनों के बीच में स्थित है। वह प्रोटेस्टैंट धर्म के समान रोम के विशप का अधिकार अस्वीकार करता है किंतु वह रोमन काथलिक चर्च की भाँति सिखलाता है कि बाइबिल ईसाई धर्म का एकमात्र आधार नहीं है। बाइबिल के अतिरिक्त वह काथलिक गिरजे की प्रथम चार महासभाओं के निर्णय भी स्वीकार करता है तथा बाइबिल की व्याख्या में गिरजे की प्राचीन परंपरा को बहुत महत्व देता है। फिर भी वह धार्मिक शिक्षा के संबंध में सैद्धांतिक एकरूपता के प्रति एक प्रकार से उदासीन है। फलस्वरूप ऐंग्लिकन चर्च में प्रायः प्रारंभ से ही कई विचारधाराओं अथवा दलों का अस्तित्व रहा है।

क्रमशः

सिख धर्मकोश

गतांक से आगे..

गुरु गोविन्द की माँग

गुरु गोविन्द सिंह ने उनका आदर, सत्कार किया और उनके भोजन तथा विश्राम निवास का समुचित प्रबंध किया। प्रमुख सभा के दिन गुरु गोविन्द सिंह जनसमुदाय के सम्मुख नंगी तलवार लिए हुए आये और बोले- 'भाइयों, आज देवी दुर्गा ने बलिदान माँगा है। क्या आप में से कोई ऐसा वीर है, जो देवी की प्रसन्नता के लिए अपना सिर दे सके'।

पाँच वीरों का बलिदान

सभा में कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। गुरुजी ने फिर कहा- 'क्या देवी की माँग पूरी नहीं होगी? तभी एक तीस वर्षीय तरुण उठा और बोला- 'मैं अपना सिर देवी को भेंट करने को तैयार हूँ।' यह लाहौर के निवासी भाई दयाराम खत्री थे। गुरु गोविन्द सिंह उन्हें एक तंबू में ले गये और एक मुहूर्त ही में लोगों ने तंबू के बाहर रक्त की धारा बहते हुए देखी। गुरु गोविन्द सिंह फिर हाथ में रक्त से सनी तलवार लेकर आये और बोले- 'देवी और बलिदान चाहती हैं। क्या दूसरा कोई व्यक्ति अपना सिर देने को तैयार है?' तभी तैंतीस वर्षीय दिल्ली निवासी भाई धर्मसिंह जाट ने आगे आकर सिर झुका दिया। गुरुजी उन्हें भी तंबू में ले गये और रक्त की दूसरी धार बहती दिखाई दी। तीसरी बार गुरुजी ने आकर फिर वही माँग की। अब की बार 36 वर्षीय मोहकमचंद धोबी आगे आये। गुरु उनको भी तंबू में ले गये और एक बार फिर तंबू के बाहर रक्त की धार बहती दिखाई दी। इसी प्रकार गुरु गोविन्द सिंह ने दो बार और आकर बलिदान की माँग की और दोनों बार क्रम से सैंतीस वर्षीय बीदर निवासी भाई साहबचंद नाई और 38 वर्षीय जगन्नाथ निवासी भाई हिम्मतराय कुम्हार ने अपना सिर देना स्वीकार किया और दोनों की वही दशा हुई जो प्रथम तीन की हुई थी। इस बलिदान भावना से सारा जनसमूह उमड़ पड़ा और गुरुजी से कहने लगा कि- 'हमारा सिर लीजिए, हमारा सिर लीजिए'।

क्रमशः

#महाशिवरात्रि! सूर्य देव के उत्तरायण में आने पर ऋतु परिवर्तन का अत्यंत शुभ समय

महाशिवरात्रि अथवा शिवरात्रि हिन्दु संस्कृति का एक प्रमुख त्योहार है। इसे शिव चौदस या शिव चतुर्दशी भी कहा जाता है। फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को शिवरात्रि पर्व मनाया जाता है। महाशिवरात्रि पर रुद्राभिषेक का बहुत महत्त्व माना गया है और इस पर्व पर रुद्राभिषेक करने से सभी रोग और दोष समाप्त हो जाते हैं। शिवरात्रि हर महीने में आती है परंतु फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को ही महाशिवरात्रि कहा गया है। ज्योतिषीय गणना के अनुसार सूर्य देव भी इस समय तक उत्तरायण में आ चुके होते हैं तथा ऋतु परिवर्तन का यह समय अत्यन्त शुभ कहा गया है।

शिवरात्रि से आशय

शिवरात्रि वह रात्रि है जिसका शिवतत्त्व से घनिष्ठ संबंध है। भगवान शिव की अतिप्रिय रात्रि को शिव रात्रि कहा जाता है। शिव पुराण के ईशान संहिता में बताया गया है कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में आदिदेव भगवान शिव करोड़ों सूर्यों के समान प्रभाव वाले लिंग रूप में प्रकट हुए-

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥

शिव

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथि में चन्द्रमा सूर्य के समीप होता है। अतः इसी समय जीवन रूपी चन्द्रमा का शिवरूपी सूर्य के साथ योग मिलन होता है। अतः इस चतुर्दशी को शिवपूजा करने से जीव को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यही शिवरात्रि का महत्त्व है। महाशिवरात्रि का पर्व परमात्मा शिव के दिव्य अवतरण का मंगल सूचक पर्व है। उनके निराकार से साकार रूप में अवतरण की रात्रि ही महाशिवरात्रि कहलाती है। हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर आदि विकारों से मुक्त करके परमसुख, शान्ति एवं ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

महाशिवरात्रि

किसी मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी 'शिवरात्रि' कही जाती है, किन्तु माघ (फाल्गुन, पूर्णिमान्त) की चतुर्दशी सबसे महत्त्वपूर्ण है और महाशिवरात्रि कहलाती है। गरुड़पुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, अग्निपुराण आदि पुराणों में उसका वर्णन है। कहीं-कहीं वर्णनों में अन्तर है, किंतु प्रमुख बातें एक सी हैं। सभी में इसकी प्रशंसा की गई है। जब व्यक्ति उस दिन उपवास करके बिल्व पत्तियों से शिव की पूजा करता है और रात्रि भर 'जारण' (जागरण) करता है तो शिव उसे नरक से बचाते हैं और आनन्द एवं मोक्ष प्रदान करते हैं और व्यक्ति स्वयं शिव हो जाता है। दान, यज्ञ, तप, तीर्थ यात्राएँ, व्रत इसके कोटि अंश के बराबर भी नहीं हैं।

गरुड़ पुराण में कथा

गरुड़ पुराण में इसकी गाथा है- आबू पर्वत पर निषादों का राजा सुन्दर सेनक था, जो एक दिन अपने कुत्ते के साथ शिकार खेलने गया। वह कोई पशु मार न सका और भूख-प्यास से व्याकुल वह गहन वन में तालाब के किनारे रात्रि भर जागता रहा। एक बिल्ब (बेल) के पेड़ के नीचे शिवलिंग था, अपने शरीर को आराम देने के लिए उसने अनजाने में शिवलिंग पर गिरी बिल्व पत्तियाँ नीचे उतार लीं। अपने पैरों की धूल को स्वच्छ करने के लिए उसने तालाब से जल लेकर छिड़का और ऐसा करने से जल की बूँदें शिवलिंग पर गिरीं, उसका एक तीर भी उसके हाथ से शिवलिंग पर गिरा और उसे उठाने में उसे शिवलिंग के समक्ष झुकना पड़ा। इस प्रकार उसने अनजाने में ही शिवलिंग को नहलाया, छुआ और उसकी पूजा की और रात्रि भर जागता रहा। दूसरे दिन वह अपने घर लौट आया और पत्नी द्वारा दिया गया भोजन किया। आगे चलकर जब वह मरा और यमदूतों ने उसे पकड़ा तो शिव के सेवकों ने उनसे युद्ध किया और उसे उनसे छीन लिया। वह पापरहित हो गया और कुत्ते के साथ शिव का सेवक बना। इस प्रकार उसने अज्ञान में ही पुण्यफल प्राप्त किया। यदि इस प्रकार कोई भी व्यक्ति ज्ञान में करे तो वह अक्षय पुण्यफल प्राप्त करता है।

अग्नि पुराण, स्कन्द पुराण में कथा

अग्नि पुराण में सुन्दरसेनक बहेलिया का उल्लेख हुआ है। स्कन्द पुराण में जो कथा आयी है, वह लम्बी है- चण्ड नामक एक दुष्ट किरात था। वह जाल में मछलियाँ पकड़ता था और बहुत से पशुओं और पक्षियों को मारता था। उसकी पत्नी भी बड़ी निर्मम थी। इस प्रकार बहुत से वर्ष बीत गए। एक दिन वह पात्र में जल लेकर एक बिल्व पेड़ पर चढ़ गया और एक बनैले शूकर को मारने की इच्छा से रात्रि भर जागता रहा और नीचे बहुत सी पत्तियाँ फेंकता रहा। उसने पात्र के जल से अपना मुख धोया, जिससे नीचे के शिवलिंग पर जल गिर पड़ा। इस प्रकार उसने सभी विधियों से शिव की पूजा

की, अर्थात् स्नापन किया (नहलाया), बेल की पत्तियाँ चढ़ायीं, रात्रि भर जागता रहा और उस दिन भूखा ही रहा। वह नीचे उतरा और एक तालाब के पास जाकर मछली पकड़ने लगा। वह उस रात्रि घर नहीं जा सका था, अतः उसकी पत्नी बिना अन्न-जल के पड़ी रही और चिन्ताग्रस्त हो उठी। प्रातःकाल वह भोजन लेकर पहुँची, अपने पति को एक नदी के तट पर देख, भोजन को तट पर ही रख कर नदी को पार करने लगी। दोनों ने स्नान किया, किन्तु इसके पूर्व कि किरात भोजन के पास पहुँचे, एक कुत्ते ने भोजन चट कर लिया। पत्नी ने कुत्ते को मारना चाहा किन्तु पति ने ऐसा नहीं करने दिया, क्योंकि अब उसका हृदय पसीज चुका था। तब तक (अमावस्या का) मध्याह्न हो चुका था। शिव के दूत पति-पत्नी को लेने आ गए, क्योंकि किरात ने अनजाने में शिव की पूजा कर ली थी और दोनों ने चतुर्दशी पर उपवास किया था। दोनों शिवलोक को गए। पद्म पुराण में इसी प्रकार एक निषाद के विषय में उल्लेख हुआ है।

शिव भक्तों का महापर्व

महाशिवरात्रि का पर्व शिवभक्तों द्वारा अत्यंत श्रद्धा व भक्ति से मनाया जाता है। यह त्योहार हर वर्ष फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चौदहवीं तिथि को मनाया जाता है। अंग्रेजी कलेंडर के अनुसार यह दिन फरवरी या मार्च में आता है। शिवरात्रि शिव भक्तों के लिए बहुत शुभ है। भक्तगण विशेष पूजा आयोजित करते हैं, विशेष ध्यान व नियमों का पालन करते हैं। इस विशेष दिन मंदिर शिव भक्तों से भरे रहते हैं, वे शिव के चरणों में प्रणाम करने को आतुर रहते हैं। मन्दिरों की सजावट देखते ही बनती है। हजा़रों भक्त इस दिन कावड़ में गंगा जल लाकर भगवान शिव को स्नान कराते हैं।

महादेव शिव के पूजन का महापर्व

भारतीय त्रिमूर्ति के अनुसार भगवान शिव प्रलय के प्रतीक हैं। त्रिर्मूति के दो और भगवान हैं, विष्णु तथा ब्रह्मा। शिव का चित्रांकन एक रूद्र भाव द्वारा किया जाता है। ऐसा प्रतीकात्मक व्यक्ति भाव, जिसके मस्तक पर तीसरी आंख है; जो जैसे ही खुलती है, अग्नि का प्रवाह बहना प्रारम्भ हो जाता है। पुराणों के अनुसार जब कामदेव ने शिव के ध्यान को तोडने की चेष्टा की थी, तो शिव का तीसरा नेत्र खोलने से कामदेव जलकर राख हो गया था।

क्रमशः